रीतिमुक्त और घनानंद का प्रेम काव्य

हिंदी, समसत्र - 2

✍डॉ. प्रमोद कुमार
हिंदी विभाग, सरिया कॉलेज, सरिया

प्रेम क्या है? प्रेम को महसूस सब करते हैं लेकिन बड़े-बड़े विद्वान भी इसकी परिभाषा बताने में हिचकिचाने लगते हैं। वास्तव में किसी भी अनुभूति को परिभाषाबद्ध कर पाना बहुत मुश्किल कार्य होता है। हम प्रेम को समझने के उद्देश्य से उसके समानार्थी शब्दों की व्यंजना करने की कोशिश करते हैं यथा प्रेम त्याग है, समर्पण है, आनन्द है, श्रद्धा है आदि आदि। प्रेम का कोई एक निश्चित स्वरूप है भी नहीं कि मात्र यही प्रेम है। साहित्य के आदिकाल से ही उसमें प्रेम को एक महत्वपूर्ण स्थान दिया गया था। समय व युग के साथ-साथ समाज में प्रेम के स्वरूप में परिवर्तन भी आया, फलतः साहित्य में भी प्रेम की अवधारणा बदली। भक्तिकालीन प्रेम छायावादी प्रेम नहीं है, ठीक इसी तरह रीतिकालीन प्रेम भी अपने वैविध्य स्वरूप लिए हुए उपस्थित हुआ।

रीतिबद्ध रचनाएं श्रृंगारिकता के छिछले स्तर का उद्घाटन करती हैं। इसमें प्रेम का स्वरूप स्थूल था। रीतिबद्ध कवियों के प्रेम में अधिकांशतः वासनाजन्य प्रेम ही परिलक्षित होता था जहाँ नायक नायिका के कुचों को यौवन के बालक रूप में देखता, अधरों का रसपान करना चाहता था। संभोग की अनेक अवस्थाओं का मादकतापूर्ण चित्रण किया गया था वहीं दूसरी ओर रीतिमुक्त कवियों का भी साहित्य हमारे समक्ष उपस्थित हैं, इसमें प्रेम का स्वरूप केवल वासनाजन्य व कामुकता पूर्ण नहीं था। ऐसे दृश्य कहीं-कहीं अवश्य मिल जाते हैं पर इनमें अनुभूति की तीव्रता अवश्य विद्यमान है। इस पर डॉ. महेन्द्र कुमार का मत देखें – "रीतिमुक्त काव्य के अन्तर्गत प्रेम का अर्थ मन का उत्कट उन्मुखी भाव है जिसकी अभिव्यक्ति करने के लिए प्रेम समस्त मर्यादाओं का उल्लंघन कर डालता है। रीतिकाव्य के समान मर्यादाभीत विलासी के इन्द्रियसुख की आतुर अभिलाषी नहीं जिसे वह बहुत बड़ा मूल्य देकर क्रय करना चाहता हो, पर अपनी नैतिक प्रतिष्ठा ओझल भी रखना चाहता है।" रीतिमुक्त कवि प्रेम को हृदय की शुद्ध, निश्चल भावधारा माना हैं इनका प्रेम है 'लोक की लाज औसोच अलोक के बारिये प्रीति के ऊपर दोई। "इन कवियों को जीवन और जगत के ये झूठे बंधन सर्वथा अस्वीकार थे इसलिए वे कवि श्रृंगार रस तथा नायिका भेद के ग्रन्थों में निर्दिष्ट प्रेम की सुनिश्चित लीकों पर नहीं चल सके हैं – स्वकीया, परकीया गणिका... ये रीतिग्रस्त प्रेम वर्णन की संकरी गलियाँ हैं इनमें इन स्वच्छंद कवियों की सांस घुटती थी। ये प्रेम की इन गलियों से निकलकर प्रेम के खुले मैदान में आए जो उसका सच्चा श्रेत्र था।"

रीतिकालीन रीतिबद्ध काव्य आधुनिक चेतना से युक्त था जहाँ पर प्रेम एक सामंती मूल्य में न होकर लोकतांत्रिक मूल्य के रूप में उपस्थित था। रीतिमुक्त कवियों में प्रेम की चेतना आधुनिक बोध से संयुक्त लगती हैं। रीतिमुक्त कवियों में घनानन्द के काव्य की उनकी अनुभूतियों के कारण एक अलग पहचान है। रीतिमुक्त काव्य में घनानन्द सर्वप्रमुख रचनाकार हैं। रीतिकाल के पचासों कवि भविष्य की ओर से आँखें मूँदकर प्रयोगशाला में काम करते-करते पीछे हट गए तब भविष्य की राह केवल घनानन्द को दिखायी पड़ी और केशव, मतिराम, देव, बिहारी तथा पद्माकर जैसे लोग जब अपनी ही सीमा में खत्म हो गए तब अतीत के जुलूस को भविष्य तक पहुँचाने की राह घनानन्द ने बनायी। रीतिमुक्त ही वह सेतु है जिस पर चढ़कर पुरानी हिन्दी कविता नवयुग में प्रवेश करती है।

इस नवयुग में प्रवेश उन स्वच्छंद कवियों ने ही कराया था जिनकी चेतना पहले के कवियों से अलग व भाव अधिक घनीभूत थे। रीतिमुक्त कवि रीतिबद्ध प्रतिनिधि कवियों से इस बात में भिन्न हैं कि

इन्होंने क्रम से रसों, भावों, नायिकाओं और अलंकारों के लक्षण कहकर उनके अन्तर्गत अपने पद्यों को नहीं रखा है। अधिकांश में ये भी श्रृंगारी कवि हैं और इन्होंने भी श्रृंगार रस के फुटकल पद्य कहे हैं। … ऐसे कवियों में घनानन्द सर्वश्रेष्ठ हुए हैं। इस प्रकार के अच्छे कवियों की रचनाओं में प्रायः मार्मिक और मनोहर पद्यों की संख्या कुछ अधिक पायी जाती है। बात यह है कि इन्हें कोई बंधन नहीं था। जिस भाव की कविता जिस समय सूझी ये लिख गए।

प्रेम में ऐसा डूब जाना कि उससे विकृति उत्पन्न होने लगे एक बात है और उसे प्रसन्न, आनन्द तथा शक्ति का स्रोत बना देना दूसरी बात। पहली रीति, साहित्य की कामशास्त्र में जा ढ़केलती है तो दूसरी काम को भी अमृतदायिनी संजीवनी में परिणत कर देती है। अश्लील से अश्लील समझी जाने वाली भावनाओं को भी व्यंजना के सहारे कला की वस्तु और प्रखर से प्रखर उत्तेजक श्रृंगार को भी संयम के द्वारा शक्ति करने वाला बनाया जा सकता है। घनानन्द के काव्य में संयम व उचित व्यंजना द्वारा ही संयोग के घोर श्रृंगारिक पदों में भी अश्लीलता जान नहीं पड़ती वरन् उनमें अनुभूति ही दीख पड़ती है –

"रति सुख-स्वेद-ओप्यौं आनन बिलोकि प्यारो,
प्राननि सिहाय मोह-मादिक महा छकै।
पीत पट छोर लै लै ढ़ोरत समीर धीर,
चुम्बन की चायनि लुभाय रहि ना सकैं।
परसि सरस विधि रूचिर चिबुक त्यौंही
कंपति करनि केलि चख-दांव ही तकै।
लाजनि लसौंही चितवानी चाहि जान प्यारी,
सींचति आनन्दघन हांसी सो भरी नकै।"

घनानंद के हृदय में सुजान के सामीप्य लाभ की ललक है, वह सुजान का शरीर-सुख चाहता है। वह उसके शरीर के प्रति समर्पित हो जाता है। "यहाँ शारीरिक समर्पण के अतिरिक्त मानसिक समर्पण भी हैं उसका मन पूरे अंगों के साथ सुजाना के चरणों में समर्पित हो जाता है। घनानंद और सुजान दोनों ही काम से उन्मत्त हैं। ऐन्द्रियजन्य उपभोग की प्रवृत्ति घनानंद के रोम-रोम में बसी हुई है।" वह सुजान को आलिंगनबद्ध करना चाहता है, उसमें समा जाना चाहता है।

घनानंद के सम्पूर्ण काव्य में विरह के पद अधिक, संयोग के पद कम हैं। यह संयोग कम समय के लिए है लेकिन जितने भी मिलन के पल हैं, उन सबका चित्रण घनानन्द ने पूरी ईमानदारी से किया है। अभिसार के लिए जाती सुजान का अंग-अंग उमंग से परिपूर्ण है, रोम-रोम पुलक रहे हैं, हृदय महक रहा है, बाहें फड़क रही हैं और कंचुकि खुल गयी है –

"ललित उमंग बेली आलबाल अन्तर तें,
आनन्द के घन सींची रोम-रोम ह्वै चढ़ी।
आगम-उमाह चाह छायौ सु उछाह रंग,
अंग-अंग फूलनि दुकुलनि परै कढ़ी।
बोलत बधाई दौरि-दौरि के छबीले दृग,
दसा सुभ सगुनौती नीकें इन हैं पढ़ी।
कंचुकि तरकि मिले सरकि उरज, भुज
फरिक सुजान चोप चुहल महा बढ़ी।"

प्रेम वह अनुकूल वेदनीय मनोवृत्ति है जो किसी व्यक्ति, अन्य जीव या पदार्थ के सौन्दर्य, गुण, शील, सामीप्य आदि के कारण उत्पन्न होती है। यह मन की ऐसी संश्लिष्ट संवेगमय स्थिति है जो आलंबन भेद से कई प्रकार की हो जाती हैं श्रद्धा, भक्ति, स्नेह, वात्सल्य और रति इन पाँचों प्रकारों में केवल रति ही काममूलक, तादात्म्यमूलक है अतएव यह प्रगाढ़ होती है। इसी प्रगाढ़ता का चित्र घनानंद खींचते हैं। ये सुजान के अंग-अंग में रति सुख देख पाते हैं क्योंकि उसमें डूबे हुए हैं। सुजान की छूटी अलकें और टूटे हार अनन्त सौंदर्य बिखेर रहे हैं। उसका गदराया यौवन काम के उन्माद से भरा हुआ है। उसकी नेत्रों में प्रेम की अरूणाई है, रात्रि-जागरण का नशा है, आँखों में खुमारी और पलकों पर पीक के निशान देखका घनानन्द मतवाला हो जाता है।

घनानन्द की रचनाएँ उनके हृदय के सहज उद्गारों की सप्राण अभिव्यक्ति हैं। कुछ आलोचकों ने उनकी अनुभूति को उर्दू-फारसी साहित्य से प्रभावित माना है तो कुछेक ने उनमें सात्विक कल्पना का रसाभास देखा है जबकि उनकी अनुभूति की कारयित्री प्रतिभा तथा प्रामाणिकता पर सन्देह नहीं किया जा सकता। उनकी रचनाओं में अनुभूतियों का अलौकिक माधुर्य विद्यमान है। 'सुजानहित' से लेकर 'पदावली' तक कहीं भी अनुभूति का रंग हल्का दिखाई नहीं देता।

घनानन्द के हृदय में प्रेम का स्फुरण पहली बार हुआ जब उन्होंने सुजान को देखा। प्रेम का उद्भव रूप सौन्दर्य से होता है। रूप के इस सौन्दर्य को देखकर घनानन्द मोहित होते हैं। उनके काव्य में प्रेम की शुरूआत यहीं से होती है जिस पर वे शानदार पंक्तियाँ लिखते हैं –

"रावरै रूप की रीति अनूप, नयौ-नयौ लागत ज्यौं-ज्यौं निहारिये।
त्यौं इन आँखिन बानि अनोखी, अघानि कहूँ नहीं आनि तिहारिये।"

प्रिय का सौन्दर्य उन्हें उस सागर समान लगता है जिसमें नित-नवीन हर समय उमड़ती रहती हैं। वे उस सौन्दर्य सागर के किनारे बैठकर उन सभी लहरों को पी जाना चाहते हैं। नृत्य के समय सुजान के शरीर में बिजली की सी गति होती है। उसकी मुस्कान में, हँसी में लगता है फूलों की वर्षा रही है –

"झलकै अति सुन्दर आगन गारै, रुकै दृग राजत काननि छुबै
हंसि बोलन में छबि फूलन की, बरषा ऊर ऊपर जाति है हबै।"

घनानन्द के काव्य में प्राणगत संवेग का आधार है सुजान का अप्रतिम सौन्दर्य। सुजान असाधारण रूपवती नारी है उसके सौन्दर्य राशि में घनानन्द आपाद मस्तक डूबे हुए हैं। सुजान की मुस्काती छवि, गदराया यौवन, अंगों से निचुड़ता लावण्य और अनन्त सौंदर्य न केवल घनानन्द के तन-मन पर प्रभाव डालता है अपितु संपूर्ण पृथ्वी पर शुभ्र ज्योत्सना सा ढुलक जाता है। घनानन्द सुजान पर दो तरीके से रीझे हैं एक तो सुजान के समग्र सौंदर्य पर, दूसरे अंग विशेष के सौन्दर्य पर। दोनों पर ही घनानन्द की दृष्टि फिसलती जाती हैं 'कायिक' और 'मानसिक' दोनों प्रकार के चित्र घनानन्द ने खींचे हैं। इसका प्रमुख कारण आसक्ति है। उनका आसक्तिपूरक दृष्टिकोण विलासी न होकर भावुकतापूर्ण है। घनानन्द का प्रेम रीतिबद्ध कवियों की तरह विलास व आमोद-प्रमोद का साधन न होकर गहरी भावनाओं से संपृक्त है। रूप सौंदर्य एवं शारीरिक सामीप्य के सुख जो कि संयोग की अन्तिम परिणति होती है, घनानन्द ने इसका चित्रण मनोहारी रूप में किया है। डाॅ. द्वारिका प्रसाद सक्सेना ने इस विषय में लिखा है, "घनानन्द की प्रेमानुभूति में श्रृंगार के संयोग या संभोग का हर्ष, उल्लास एवं सुख भी भरा हुआ है। यद्यपि घनानन्द ने थोड़े से शब्दों में ही प्रेम संयोग का निरुपण किया है जिसमें संभोग सुख की उमंग, मिलन का उल्लास, आनन्द क्रीड़ा की आतुरता, रति सुख का उत्साह, सामीप्य लाभ का हर्ष तथा संसर्ग की लालसा का वेग भरा हुआ है।"

घनानन्द बहुत विशिष्ट कवि हैं। उनके यहाँ प्रेम का स्वरूप व्यापक एवं रीतिकालीन अन्य कवियों से भिन्न है परन्तु यह भिन्नता संयोग शृंगार में न होकर वियोग में है। संयोग शृंगार के कवि के रूप में वे इतने विशिष्ट नहीं है। घनानन्द ने संयोग के चित्र दो प्रकार से चित्रित किए हैं। एक रीतिबद्ध शैली में अर्थात् नायक व नायिका की कामोत्तेजक चेष्टाओं, संकोतों, रीति क्रीड़ाओं आदि का वर्णन और दूसरे प्रकार के चित्रों में संयोग वर्णन रीतिमुक्त है परन्तु रीतिमुक्त होते हुए भी वर्णन लगभग रीतिबद्ध कवियों का सा है। इन समस्त वर्णनों में कथ्य में किसी भी प्रकार की नवीनता नहीं है। सम्पूर्ण चित्रण परम्परागत है। इस दृष्टि में घनानन्द में और रीतिबद्ध कवियों में कोई अन्तर नहीं।

अतीत के संयोग के विरल पलों को ही पाथेय बना वह अपनी जीवन-यात्रा निर्णीत करते रहे। जीवन भर इसी स्मृति को हृदय की मंजूषा में संभाले रहे। उसके लिए संयोग क्षणिक और वियोग शाश्वत है। क्षणिक संयोग के पलों में भी उसे वियोग की आशंका बनी रहती है। जीवन के निजी एकान्तिक पलों में भी कवि को यही चिन्ता सताती रहती है कि कहीं वियोग न हो जाए। मिलन से पूर्व ही विरह की संभावना सताने लगती है, मिलन का आनन्द इसलिए नहीं कर पाता कि कहीं सुजान दूर न चली जाए –

''मिले हूँ मिले को सुख पाय न पलक एकौ,
निपट बिकल अकुलानि लागिये रहै।"

अनोखी भावना है, तन निकट होने पर भी उसके संसार में मानसिक दूरी सदैव बनी रहती है। शायद ही रीतिकाल के वासना पिपासु कवियों में ऐसा कोई हो जिसमें इतनी प्रबल भाव-प्रवणता विद्यमान हो कि दूरी न हो जाए यह सोचकर संयोग न कर पा रहा हो –

"अनोखी-हिलग दैया बिछुरे तो मिल्यौ चाहै,
मिले हूँ मैं मारै जारै खरक बिछोह की ।"

मन में अनेकानेक अभिलाषाएँ भी पड़ी हैं, हृदय तो क्या रोम-रोम प्रिय के दर्शन चाहता है, परन्तु दर्शन होते ही भागकर आंसू प्रिय मिलन के लिए पहले भाग पड़ते हैं। जब आंसू से नेत्र लबालब हें तो संयोग कैसे हो, स्वयं कवि भी दुविधा में है –

"यह कैसो संजोग न बूझि परै,
कि बियोग न क्यों हूँ बिछोहत है।"

घनानन्द की प्रेम साधना इसलिए चरम साधना के रूप में प्रतिष्ठित है। उसकी चरम साधना सामान्य प्रेम प्रवाह में बहुत आगे है। विरह में मंजिष्ठा रोग हो जाता है, प्रेम का पूरा परिपाक हो जाता है या प्रेम का योग न होने से वह राशीभूत हो जाता है। … प्रिय के वियोग में ही नहीं संयोग में भी अशंति साथ नहीं छोड़ती।

मध्ययुग में सूफी तथा फारसी पद्धति के संयोग से जिस वियोगप्रधान प्रवृत्ति का आरम्भ हुआ था, रीतियुग में भी वह प्रवाहित होती रही। स्वच्छन्द धारा के कवियों विशेषतः घनानन्द ने फारसी काव्य-पद्धति से प्रिय की निष्ठुरता और सूफी कवियों से 'प्रेम की पीर' की प्रेरणा ली है। इनके प्रेम के लौकिक पक्ष पर जहाँ फारसी भाव-धारा का अधिक प्रभाव है, वहीं अलौकिक पक्ष सूफी धारा से प्रभावित है। इन दोनों ही धाराओं में क्योंकि वियोग प्रचुरता से विद्यमान रहा है, अतः घनानन्द की शृंगार-दृष्टि भी वियोग-प्रधान हो गई है। मनोविज्ञान शास्त्र में मनोवेगों के अतिरेक को ही अतिशय दुःख का मूल कारण माना गया है। इनके कारण बाह्य प्रकृति का सौन्दर्य और मानवीय सौन्दर्य भी मनुष्य के लिए विषाद का कारण ही बनते हैं। घनानन्द के विरह वर्णन में भाव-सूक्ष्मता, आवेग, सहजता, मार्मिकता और आन्तरिकता आदि के साथ-साथ संयोग-वियोगानुभूति का अद्‌भुत समावेश इसी मनोवैज्ञानिक सत्य का परिचायक है।

विरहानुभूति अपनी मार्मिकता, सत्यता तथा निश्छलता के कारण अन्य से भिन्न है क्योंकि उन्होंने विरह का आन्तरिक अनुभव किया है। भावाभिव्यक्ति के स्थों पर कवि ने अभिधा वृत्ति का ही आश्रय लिया है। उक्ति-वैचित्र्य पर अधिक ध्यान न देने के कारण ही उन्हें रीतिमुक्त कवियों की श्रेणी में अग्रगण्य माना जाता है। उनकी पीड़ा मुखर होकर भी मौन है तथा मन में ही उन्हें संतप्त करती है –

"सो रूधि मो हिय मैं घनआनँद,
सालति क्यौं हूँ कढ़ै न कढ़ाई।"

वह अग्नि की ज्वाला को सहन भी करता है और मुस्कुराता भी है। वह विरहाग्नि का अनुभव करता है परन्तु बता नहीं पाता आग कहाँ लगी है। विचित्र अग्नि आँसुओं से और भड़कती है जबकि अग्नि जल से बुझती है। ऐसी नेहभरी बातों को केवल याद करके जिया जा सकता है, बताकर नहीं –

"नेह भीजी बातें रसना पैऊ आंच लागै,
जागैं घनआनन्द ज्यौं पुंजनि मसाल है।"

जितना ही वह स्नेहिलशीलता बातों को याद करता है, उसकी वाणी मशाल के समूह की तरह जलती है। यह कष्ट इसलिए ज्यादा है क्योंकि न इसे सहन किया जा सकता है न ही दूर किया जा सकता है। उनकी आँखों में अनोखी वापस छाई रहती है – आँखें हर समय बरसती रहती हैं-

"अन्तर-आँच उसास तवैं अति अंग उसीजै उदेग की आवस।
नैनउ धारि हियैं बरसैं घनआनंद छाई अनोखियै आवस।
'सोयबो न जागिबो हो, हँसिबो न रोयबी हूँ,
खोय-खोय आह ही मैं चटक लहनि है।"

घनानन्द के विरह में विरोधाभास बहुत मिलता है, हँसते भी हैं, रोते भी हैं, जल से अग्नि बुझती है परन्तु इनके अश्रुरूपी जल से विरहाग्नि और दहक उठती है। प्रेम की अनिर्वचनीयता का आभास घनानन्द ने विरोधाभासों द्वारा दिया है। उनके विरोधमूलक वैचित्र्य की प्रवृत्ति का कारण यही समझना चाहिए। घनानन्द के विरह-वर्णन में जितना भी लिखा जाए कम है क्योंकि इन्होंने अगर कुछ लिखा है तो विरह। वह विरह इतना गंभीर है, अथाह है कि उसकी थाह पाने के लिए –

"समुझै कविता घनआनन्द की,
हिय आंखिन नेही की पीर तकी।"

यह सर्वसाधारण की समझ के बाहर की वस्तु है। इसे तो कोई रसिक ही समझ सकता है जिसने प्रेम की पीड़ा को हृदय की आँखों से देखा हो। घनानन्द स्वयं उस दुःख का वर्णन नहीं करते क्योंकि कहने से कथित और अनुभूत दुःख में बहुत अन्तर हो जाता है। कहीं प्रकृति के दाहक स्वरूप में घनानन्द को अपनी ही व्यथा की संवेदना मिलती है –

"विषम उदेग-आगि लपटैं अन्तर लागैं,
कैसे कहौं जैसें कछू तचनि महा तई।"

घनानन्द की व्यथा, उनकी पीड़ा मधुर है। सुजान से इतना प्रेम है कि उसकी व्यथा तक से मुक्ति नहीं पाना चाहता। सामान्यतः जीवन में जब व्यक्ति पर कोई कष्ट, आपत्ति आती है तो वह सौ-सौ यत्नों के द्वारा उसे दूर करने की चेष्टा करता है परन्तु घनानन्द के सम्बन्ध में विलक्षणा दृष्टिगोचर होती हैं सुजान का सान्निध्य भगवान ने छीन लिया परन्तु उसकी स्मृति को वे किसी कीमत पर छोड़ना नहीं चाहते, चाहे कितने भी कष्ट क्यों न हों।

घनानन्द में जो टीस, कसक एवं तड़प है, वह सब आंतरिक है, विरह की बाहरी नाप-जोख उसमें नहीं है। बिहारी के विरह वर्णन में जहाँ शारीरिक ताप एवं विरहजन्य कृशता का अत्युक्तिपूर्ण उल्लेख है, वहीं घनानन्द के विरह वर्णन में हृदय की आंतरिक हलचल है, इसलिए वह वियोग बाहर से प्रशांत एवं गंभीर दिखाई पड़ता है। घनानन्द के विरह पर दिनकर ने टिप्पणी करते हुए कहा है- "वे अपने आँसुओं से रो रहे हैं, किराए के आँसुओं से नहीं।" विरह में प्रेम परिपक्व हो जाता है और उस की ऐन्द्रिकता आत्मिकता में परिणत हो जाती है। घनानन्द के काव्य रचना की प्रेरक शक्ति राजाश्रयी नहीं है। उनका स्वयं का विरह ही वह प्रेरणा है, इस पर ही दिनकर लिखते हैं – "विरज तो घनानन्द की पूँजी ठहरी। रीतिकाल की बौद्धिक विरहानुभूति की निष्प्राणता और कुण्ठा के वातावरण में घनानन्द की पीड़ा की टीस सहसा ही हृदय को चीर देती है और मन सहज ही मान लेता है कि दूसरे के लिए किराए पर आँसू बहाने वालों के बीच एक ऐसा कवि हैं जो सचमुच अपनी पीड़ा से रो रहा है।"

घनानन्द प्रेमी है, विरह होता है तो उसे सहने की भी क्षमता रखते हैं। वे कायर नहीं है कि प्राण त्याग दें व प्रेमी बदनाम भी हो जाए कि इसी की वजह से प्राण चले गए –

"हीन भएं जल मीन अधीन कहा कछु मो अकुलानि समानै।
नीर सनेही को लाय कलंक निरास है कायर त्यागत प्रानै।"

घनानन्द के प्रेम वर्णन की सबसे बड़ी विशेषता है – वैषम्य। सूक्ष्मतः प्रेमी की प्रेमासक्ति जितनी उत्कट है उतही ही उपेक्षावृत्ति प्रबल है। प्रेमी स्नेहसिक्त, सरल, सीधा है। प्रेमी का स्वभाव स्मरण का है, प्रिय का भूलने का। प्रिय मोहन है, प्रेमी मोहित। वह निहकाम है, प्रेमी सकाम।" इस प्रकार प्रेमी और प्रिय के स्वभाव, व्यवहार की विषमता के कारण प्रेमगत वैषम्य का जन्म होता है। "फारसी परंपरा में प्रेम की एकांतिकता, अनन्यता, उच्चता आदि दिखाने के लिए प्रिय को कठोर एवं स्नेहहीन दिखाया जाता है। घनानन्द उर्दू-फारसी भाषा से परिचित थे। वह उनकी 'इश्कलता' और 'वियोगवेलि' से अनुमित होता है।" प्रिय दुःख देकर सुख प्राप्त करता है, प्रेमी हृदय देकर चिंता लेता है। ये अपने प्रिय को इस प्रेम भावना के प्रति क्षुब्ध हो उठते हैं, अनेक उपालम्भ देते हैं, फिर भी अपनी टेक नहीं छोड़ते –

"ऐसे घनआनंद गड़ी है टेक मन माहि,
एरे निरदयी तोहि दया उपजायहौं।"

प्रिय की उपेक्षा को सहन करके भी उस के प्रति किसी न किसी रूप में आस्था रखना और प्रेम के उच्च शिखर पर टिके रहना वास्तव में वैषम्य की यह अतिवादी स्थिति है। घनानन्द अपने प्रिय को संबोधित करके कहते हैं –

"चाहौ अनचाहौ जान प्यारे पै आनन्दघन
प्रीति-रीति विषम सु रोम-रोम रंमी है।"

यह विषम प्रीति उन की कविता में शैलीगत वैषम्य अथवा विरोध भावना के रूप में परिलक्षित होती हैं उनको प्रिाय की उपेक्षा सहज है किन्तु उन्हें विश्वासघात का दुःख है, वे कहते हैं –

"मनमाहिं जो तोरन ही तो, कहौ बिसवासी सनेह क्यों जोरत हो।
घनानन्द के प्रेम में 'एक ओर सघन स्मृति, दूसरी ओर शुद्ध विस्मृति।"

घनानन्द ने अपने हृदय की तुलना 'भसमी विथा' से की है, यह ऐसा रोग है जिसमें रोगी खूब खाता है परन्तु फिर भी भूख नहीं मिटती। आँखें प्रियदर्शन बिन जल रही है, प्रिय आँखों का अंजन ही औषधि है परंतु वह अप्राप्य है। तीव्र भुभुक्षा और तीव्र दर्शनेच्छा दोनों को कवि ने ऐसे सिद्ध किया –

"देखियै दसा असाध अँखियाँ निपेटिनी की,
भसमी विथा पै नित लंघन करति हैं।
'अँखियाँ दुखियानि कुबानि परी, न कहूँ लगै कौन घरी सुलगी।'
'बूँद लगै सब अंग दगैं, उलटी गति आपने पापनि देखी।'
'तब तो छवि पीवत जीवत थे, अब सोचन लोचन जात जरै।"

वास्तव में इन्हीं उदाहरणों में विरह का वर्णन वैषम्य सहित है। प्रेम की विषमता जो घनानन्द के प्रेम में मौजूद है, विषय पर घनानन्द ने इतना लिखा है और सुन्दर लिखा हैं मानों वियोग पक्ष का सारा सौन्दर्य प्रेम वैष्मय में सिमट आया हो। डा॔. कृष्ण चन्द वर्मा के शब्दों में – "इसमें सन्देह नहीं कि प्रेम-विषमता का घनानन्द से बड़ा पोषक हिन्दी में दूसरा नहीं हैं हिन्दी सूफी कवियों में भी वह प्रेम-वैषम्य कहाँ जो घनानन्द कै विरह काव्य का प्राण है। 'प्रेम की पीर' और 'प्रेम विषमता' ये मानों घनानन्द के विरह काव्य की मूल्यवान भाव सम्प्रदायें हैं। इन्हें निकाल देने पर फिर उसमें कुछ नहीं रह जाता।"

घनानन्द की अनुभूति आन्तरिक है। उन्होंने प्रेमानुभूति में अंतरिन्द्रियों यथा बुद्धि, जीव, मन और अभिलाषा, रीझ, मोह, आशा, निराशा, उत्साह, हर्ष, औत्सुक्य, मति एवं रति आदि भावों का प्रमुख रूप से चित्रण एवं विश्लेषण है। अनुभूति की आन्तरिकता के कारण ही वे इस प्रकार के भावगत चित्र तूलिका बद्ध करने में सफल हो सके हैं।

घनानन्द अपनी नियति को स्वीकार कर लेते हैं। घनानन्द विवश हैं। यदि सुजान का स्वभाव कठोर है और वह स्वयं को बदलना भी नहीं चाहती हो घनानन्द इसमें क्या कर सकता है? सुजान की निष्ठुरता का जवाब नहीं है। घनानन्द को बांधकर उसने दयनीय बना दिया है। उस पर रूक-रूक कर वार करती है और घनानन्द छटपटाते हैं –

"गुहरि पकरि लै निपांख करि छोरि देहु,
मरै न जियै सौ महा विषम दया छुरी।"

घनानन्द के प्रेम में 'केसर-कस्तूरी की गंध' कम, 'नागफनी की छुअन' अधिक हैं
घनानन्द ऐसे कवि हैं जिन्होंने राजा के डर से अपनी दिशा नहीं बदली। उन्होंने यश-अपयश, नैतिक-अनैतिक से समझौता नहीं किया, इसी कारण उनकी कविता डूब जाने की वस्तु बनी। यह एक ऐसी अद्‌भुत सृष्टि है, जिसका प्रभाव अर्थ समझने से पहले पड़ने लगता है। प्रेम में मग्न घनानन्द अपनी प्रिय सुजान को ही देखना, सुनना व स्मरण करना चाहते हैं –

"जब ते निहारे इन आँखिन सुजान प्यारे,
तब ते गही है उर आनि देखिबे की आन।
रस भीजै बैननि लुभाय कै रचै हैं तहीं,
मधु-मकरूद-सुधा नावौ न सनत कान।"

घनानन्द के स्वच्छंद भाव के कायल तो सभी ही हैं। ये अनूठी उक्तियाँ बाँधने वाले थे पर हृदय से सम्पृक्त। रीतिबद्ध रचना में हृदय पक्ष दब गया था ... 'स्वच्छन्द कवि' हृदय की दौड़ के लिए राजमार्ग चाहते थे, रीति की संकरी गली में धक्कमधक्का करना नहीं।
घनानन्द 'प्रेम की पीर' के कवि हैं। इनका प्रेम इनकी 'आत्मा की पुकार' है जिसमें किसी प्रकार का बनावटीपन नहीं है। घनानन्द की रचनाओं में अभिव्यक्त श्रृंगारिकता इनकी आंतरिक भावनाओं का प्रतिनिधित्व करती हुई आती हैं। उनके लिए उत्सर्गमयी प्रेम ही वह जीवन मूल्य है जो कविता मे॓ं ढ़लकर

आती है। प्रेमिका के प्रति अनन्यता का भाव विद्यमान है। प्रेमिका द्वारा लगातार उपेक्षा के बावजूद इनकी एकनिष्ठता डिगती नहीं है। घनानन्द की यह आशा व एकनिष्ठता ही उनके प्रेम को और ऊँचा बनाती है –

"आस लगाय उदास भए सुकंरी जग मैं उपहास-कहानी।
एक बिलास की टेक गहाय कहा बस जौ उर और है ठानी।
एहो सुजान सनेही कहाय दई कित बौरत हौ बिन पानी।
यौं उधरै घनआनन्द छाय कै हाय परी पहचानि पुरानी।"

उस सामंती व पितृसत्तात्मक युग में वह विलक्षण है जब नारी की एकनिष्ठता के जवाब में पुरुषों के बहुनिष्ठ प्रेम की मान्यता सामाजिक मूल्य बन चुकी थी, ऐसे समय में अपने प्रेम, भावना और अपनी प्रेमिका के प्रति निष्ठा और समर्पण को बनाए रखना ही घनानन्द की विशिष्टता प्रदान करता है।

"घनानन्द का प्रेम एकदम सरल एवं सच्चा है जहाँ निष्कपट भाव है।
'अति सूधो सनेह को मारग है, जहाँ नेकु सयानप बाँक नहीं।
तहाँ साँचे चलै तजि आपुनको, झिझके कपटी जे निसांक नहीं।"

छल, कपट, बौद्धिक भाव एवं श्रम की वहाँ आवश्यकता नहीं केवल एक वस्तु की अपेक्षा है – अनन्यता। घनानन्द ने प्रेम को सरल तो कहा परन्तु प्रेमी को यातना झेलनी पड़ती है, वही पा्रेम की कसौटी है। चूक होने पर प्रेमी साध्य से गिर जाता है। प्रेम मार्ग का नित्य लक्षण है संताप साधना। प्रेम का नाम लेने ही से जीभ में छाले पड़ते हैं –

"जान घनआनन्द अनोखो यह प्रेम पंथ,
भूले ते चलत, रहै सुधि के थकित ह्वै।
बुरौ जिग मानौ जौ न जानौ कहूँ,
सीखि लेहु रसना के छाले परै प्यारे नेह नावै छ्वै।"

इनका प्रेम पंथ सीधा है और अत्यन्त टेढ़ा भी। रीतिबद्ध कवियों ने काव्यशास्त्रीय शैली के आधार पर प्रेम का वर्णन किया है, रीतिमुक्त कवि इस परिपाटी से मुक्त रहकर सच्चै हृदय से प्रेम किया। इन कवियों की प्रेम तृषा सदा बढ़ती रहती है। इनमें प्रेम की अथाह पीर है जिसे पहचानने के लिए एक पीर भरा हृदय अपेक्षित है – 'समुझै कविता घनानन्द की, हिय आँखिन प्रेम की पीर की'।

घनानन्द के काव्य में प्रेम का विकास होता है। उनकी रचनाएं हमें लौकिक से अलौकिक जगत की यात्रा पर ले जाती हैं। लेकिन विषय चाहे लौकिक हो या अलौकिक, सन्दर्भ प्रेम का हो या भक्ति का उनकी रचनात्मक प्रेरणा के केन्द्र में उनकी प्रेमिका सुजान सदैव रहीं। इनकी प्रेम चेतना इनके भोगे हुए जीवन का यथार्थ उद्घाटित करती हैं।

इनका प्रेम एकतरफा प्रेम है। उन्हें प्रेम में असफलता हाथ लगी। उनकी प्रेमिका से उपेक्षा और तिरस्कार पाकर वे अलौकिक जगत की ओर जाते हैं और निम्बार्क संप्रदाय में दीक्षित होकर वे राधाकृष्ण की भक्ति में लीन हो गए। राधाकृष्ण वर्णन में भी सुजान मौजूद हैं। उंनकी रचनाओं में लौकिकता की सतत् उपस्थिति ही इन्हें तमाम रीतिकालीन कवियों से जोड़ती है लेकिन प्रेम में अनन्यता उन्हें भक्त कवियों के करीब ले आती है-

"ऐरी रूप अगाधे राधे, राधे राधे राधे राधे।
तेरी मिलिवे को ब्रजमोहन, बहुत जतन हैं साधे।।"

कवि के जीवन के अन्तिम वर्ष राधा-कृष्ण की आराधना करते हुए वृन्दावन में बीते और उन्होंने भगवद्भक्ति को अपने जीवन का चरम लक्ष्य बना लिया –

"मोहन-सोहन-जोहन की लगियै रहै आँखिन के उर आरति।
कान्ह परै बहुतायन में, इकलैन की वेदन जानी कहा तुम।।"

भक्ति के अनेक छन्दों में कवि की प्रेम भावना औदात्य तक जा पहुँची है जो एक कवि की सच्ची सफलता है। प्रेमी का जो भारतीय आदर्श है उसकी रक्षा करते हुए कवि ने सदैव उसवके हित की ही कामना की है। अपनी प्रेमिका की निन्दा वह और किसी के मुख से तो सुन ही नहीं सकते, स्वयं भी सदैव आशीष ही देते हैं-

"जहाँ जब जैसे तहाँ तब तैसे नीके रहौ
सब विधि प्रान प्यारे हित आलबाल हौ।'

विरह की अन्तिम दशा के रूप में कवि ने मरणासन्न प्रेमी की व्यथा और प्राणों के अटकने का संकेत दिया है –

"बहुत दिनन के अवधि आस-पास परे
खरे अरबरनि भरे हैं उठि जान कौ।
सधर लगै हैं आनि करिकै प्रयान प्रान,
चाहत चलन ये संदेसौ लै सुजान कौ।"

निष्कर्षतः घनानन्द का प्रेम आत्मा की आवाज है, वे प्रेम के पीर के कवि हैं। उनका काव्य उनकी प्रेमिका के होठों की लालिमा, यौवन व अलकों तथा कुचों से प्रारम्भ हो हृदय में प्रवेश करता है जहाँ से विराहनुभूति के कारण वह लौकिक से अलौकिक तक की यात्रा करता है। रीतिकालीन कवियों के समान उनका प्रेम स्थूल ऐन्द्रिक नहीं हृदय की मार्मिक पीड़ा का अनुभावाश्रित विश्लेषण है, भावात्मक स्पर्श है। उनके प्रेम में बौद्धिकता नहीं, हृदयंगत सरलता है। बुद्धि का स्थान गौण मानने के कारण यहाँ एक मनोवैज्ञानिक सत्य की भी सिद्धि होती है, जैसा कि फ्रायड ने भी कहा है कि हृदय के सहज भाव अवचेतनता में ही उत्पन्न हो सकते हैं। घनानन्द के अवचेतन में ये भाव स्वच्छंदता पूर्वक आ रहे थे। इनकी कविताओं में वैयक्तिक संस्पर्श के प्रभाव से जो मार्मिकता और रसार्द्रता सन्निविष्ट हो गई है वह इन्हें रीतिबद्ध कवियों से अलग एक दूसरी कोटि प्रदान करती है। यहाँ पर नायक-नायिकाओं के साँचे में ढ़ले हुए प्रेमी-प्रेमिका का दर्शन नहीं होता। यहाँ तो कवि की अनुभूतियों ने स्वयं कविता का आकार धारण कर लिया है-

"लोग हैं लागि कवित्त बनावत
मोहि तो मोरे कवित्त बनावत।"